जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

ISSN 2454-4450

मूल्य ₹ 40

हंस

जुलाई 2020

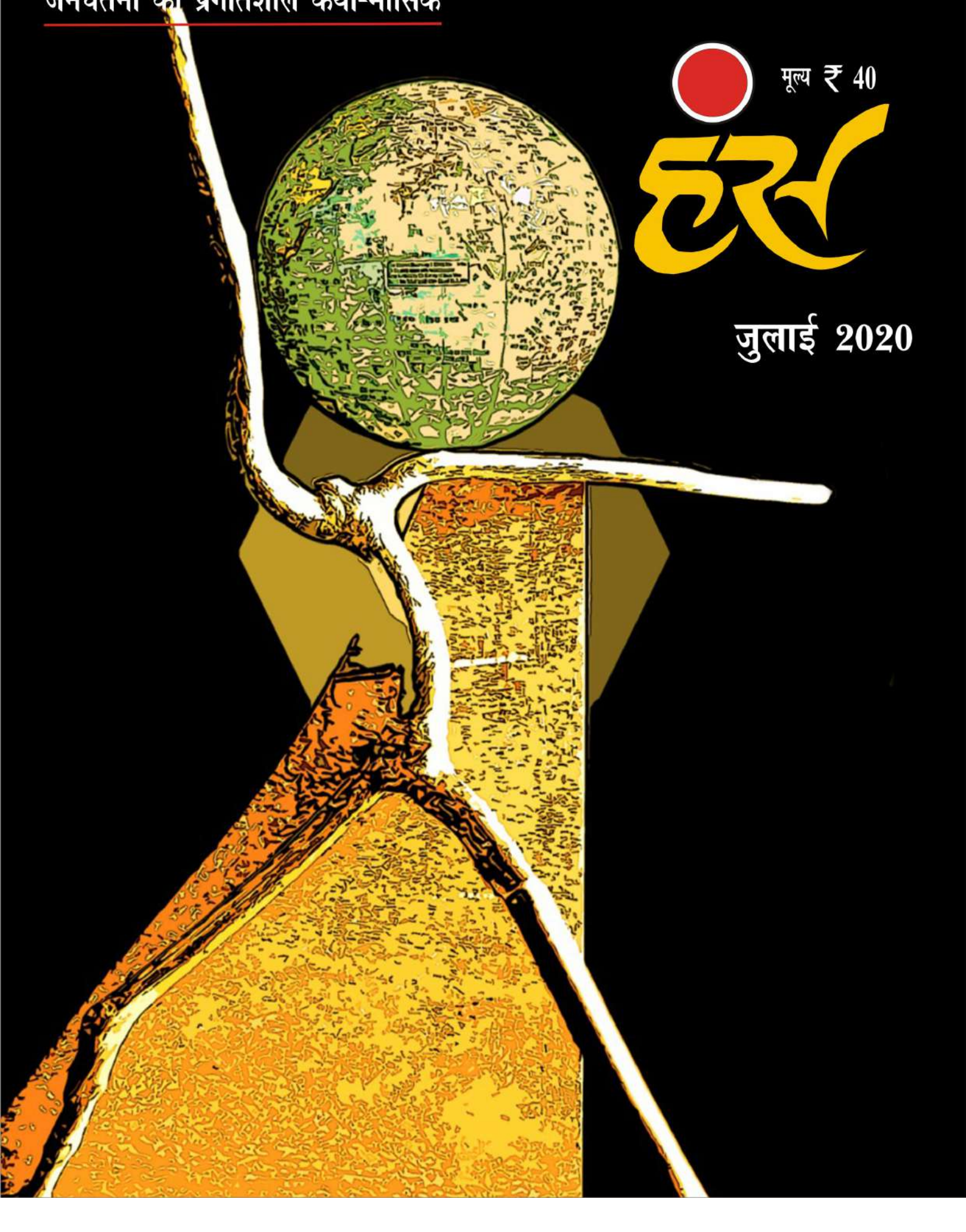

स्त्री रचनाशीलता और स्त्री आलोचना

रेखा सेठी

लेख

हिंदी की स्त्री रचनाकारों की कतार में आलोचक बहुत कम हैं. स्त्री-चिंतन की चुनौतियों पर विचार करते हुए स्त्री आलोचना के ग्राफ को ठीक-ठीक पहचानना भी आवश्यक है. रचना और आलोचना का घनिष्ठ संबंध है. दोनों एक-दूसरे के क्षितिज को विस्तृत करती हैं. जेंडर और साहित्य के रिश्तों की पड़ताल में एक अदृश्य-सा समझौता दिखाई पड़ता है. रचना का संबंध मनुष्य के भाव जगत से अधिक है, इसलिए वह स्त्रियों के हिस्से रहा लेकिन जहां साहित्य का नीति निर्धारण होता है, ताकत के समीकरण बनते हैं किसी एक को प्रतिष्ठित व दूसरे को अदृश्य करने की योजनाएं बनाई जा सकती हैं, आलोचना का वह संसार, पुरुष रचनाकारों के अधिकार क्षेत्र में रहा है. इस वर्गीकरण के लिए संभवतः लैंगिक भेदभाव के बजाय स्त्रियों का अपना चुनाव भी रहा. स्त्रियां प्रायः स्वयं को कविता या कथा की रचना-सृष्टि में स्वयं को अधिक सहज पाती हैं. अपने जीवन के ही समानांतर कविता और कथा संसार में एक दूसरा जीवन रचते जाना उनकी कलम को सुहाता है. आलोचना जगत के सिद्धांत और परिभाषाएं कितना उनके मनोनुकूल बैठते हैं यह कहना कठिन है. दूसरी ओर, व्यावसायिक दृष्टि से अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं के संपादन का आधिकारिक काम पुरुषों ने ही अपनाया जिसने इस क्षेत्र में उनके एकाधिकार को और मजबूत किया. ऐसा किसी योजना के तहत हुआ या स्त्री और पुरुष के स्वाभाविक भेद के कारण इस विषय में कुछ भी कहने का अधिक अर्थ नहीं है.

आलोचना जगत में साहित्य की लंबी परंपरा के रहते हुए भी स्त्रियों का दखल कम ही रहा. कविता में जैसे मीरा और महादेवी के नाम आते हैं या कहानी में बंगमहिला तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में छोटी-छोटी कहानियां रचने वाली महिलाओं का रचना-कर्म उपलब्ध है, वहीं साहित्य आलोचना के क्षेत्र में स्त्री रचनाकारों की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं बनती. जिस समय में महादेवी लिख रहीं थीं उस समय किसी स्त्री आलोचक की वैसी प्रतिष्ठा बनी हो यह दिखाई नहीं पड़ता. यद्यपि महादेवी ने स्वयं अपने समकालीन रचनाकारों पर महत्वपूर्ण संस्मरण लिखे और पत्रिकाओं का संपादन भी किया लेकिन उस लेखन का उद्देश्य साहित्य रचना की कसौटियों का निर्माण या आलोचकीय साहित्यानुशासन को दृढ़ करने की अपेक्षा, अपने पथ के साथियों का संवेदनात्मक व सहानुभूतिपूर्ण चित्रण करना ही अधिक था, जैसा उन्होंने अपने अन्य संस्मरणों तथा रेखाचित्रों में किया. हां, 'शृंखला की कड़ियां' ऐसे निबंधों का संकलन अवश्य है जो उस समय से भी अधिक आज प्रासंगिक हो गया है और स्त्री चिंतन का आधार ग्रंथ माना जा सकता है लेकिन कुल मिलाकर आलोचना की दुनिया में स्त्रियों का हस्तक्षेप कम से कमतर रहा. बाद में कुछ शोध-प्रबंधों के प्रकाशन के रूप में ऐसी पुस्तकें अवश्य प्रकाशित हुईं. इसके बाद एक और नाम जो अपनी जगह बनाता है, वह डॉ. सावित्री सिन्हा का है. उनकी बहु-प्रशंसित पुस्तकों में 'ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य का अभिव्यंजना शिल्प' तथा 'युगचारण दिनकर' आदि तो हैं ही एक और महत्वपूर्ण किताब भी है, 'हिंदी की मध्यकालीन कवयित्रियां' जिसमें उन्होंने मध्यकाल में रचनाशील स्त्रियों के जीवन एवं रचना कर्म का लेखा-जोखा दिया है.

आलोचना की दुनिया में नामवर सिंह का उदय एक धूमकेतु के उदय होने जैसा ही रहा. अपने जीवन-काल तथा उत्तर जीवन में वे हिंदी साहित्य को अनेक रूपों में प्रभावित करते रहेंगे इसमें कोई दो राय नहीं है. लगभग उनके साथ या उनके कुछ बाद स्त्री रचनाकारों में निर्मला जैन का नाम उभरता है जिनका पूरा रचना कर्म आलोचना को ही समर्पित है. 1967 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'रस सिद्धांत एवं सौंदर्यशास्त्र' पर उन्हें दिल्ली विश्वविद्यालय की सबसे पहली डी.लिट् की उपाधि प्रदान की गई थी. आज भी यह ग्रंथ उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा का प्रमाण है. काव्यशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र को अपना विषय बनाते हुए, इस पुस्तक में निर्मला जैन एक साथ साहित्यिक अभिरुचि एवं साहित्यिक मानदंड की दृष्टि से साहित्य एवं कला के उच्च कोटि के अध्ययन को आलोचना के केंद्र में लाती हैं. शोध-परक विश्लेषण पद्धति जिस तार्किकता से एक-एक बिंदु प्रतिष्ठित प्रतिस्थापित करती हुई आगे बढ़ती है वह अपने आप में आलोचना का एक मॉडल है. उस पर जितनी बात होनी चाहिए थी संभवतः उतनी नहीं हुई और न ही बाद में ऐसी कोई परंपरा विकसित हुई जिसमें भारतीय काव्यशास्त्र और पश्चिम के सौंदर्यशास्त्र

को एक साथ रखकर देखा जाए. निर्मला जैन की आलोचना शैली, स्त्री लेखन की राजनीति, स्त्री-आलोचना की पद्धतियों पर विचार करना सामयिक होगा.

2015 में कोलकाता से निकलने वाली पत्रिका 'लहक' के लिए मैंने उनका साक्षात्कार लिया था. उसमें जब यह सवाल उनके सामने रखा कि 'आलोचना के क्षेत्र में आपका योगदान ऐतिहासिक है लेकिन क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि एक स्त्री होने के कारण पुरुष वर्चस्व वाली इस विधा में आपको पर्याप्त श्रेय नहीं मिल पाया?' तो उसके जवाब में जो उन्होंने कहा वह साहित्य और जेंडर के संबंध का बहुत बड़ा संकेतक है. "आप ऐसा सोचती हैं और मेरे लिए यह धर्मसंकट है बिल्कुल ईमानदारी से महसूस करती हूं कि निश्चित रूप से ऐसा हुआ है. मेरे बहुत से समकालीन हैं जिन्होंने मुझसे बहुत कम काम किया है और उन सबसे मेरे अच्छे संबंध हैं. जब आलोचकों की गिनती होती है तो मुझे छोड़कर इन सबका नाम लिया जाता है. यह अन्याय तो है लेकिन मुझे इसकी बहुत चिंता नहीं है. राजेंद्र यादव अक्सर कहा करते थे, 'अरे! 150 साल की अकेली स्त्री आलोचक!' उनके अलावा शायद ही किसी ने ऐसा कहा या माना हो. बहुत कम पुरुषों में यह उदारता होती है कि स्त्रियों को अपने बराबर खड़ा देख सकें और सराह सकें. एक अर्थ में पुरुष वर्चस्व वाली बात ठीक है. "यह नोट किया जाना चाहिए कि यह बेबाक टिप्पणी तब आती है जबकि निर्मला जैन अपने लेखन में अनेक अवसरों पर यह कह चुकी हैं कि साहित्य में स्त्री होने के नाते कोई रियायत नहीं दी जा सकती. स्त्री आलोचना के मापदंड साहित्य की साधारण आलोचना से अलग नहीं हो सकते क्योंकि समय के अंतराल पर जो श्रेष्ठ होगा वही जीवित रहेगा और उसमें स्त्री और पुरुष का भेद नहीं होगा.

निर्मला जैन की समकालीन तीन बड़ी स्त्री रचनाकार हैं–कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा तथा मन्नू भंडारी. इनके लेखन पर निर्मला जैन ने एक पूरी आलोचनात्मक पुस्तक लिखी–'कथा समय में तीन हमसफर'. इन तीनों में समानता यह है कि ये सभी स्त्री रचनाकार हैं लेकिन अपनी अनुभूति की बनावट तथा रचना जगत में तीनों एक-दूसरे से भिन्न हैं. तीनों के यहां स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता को लेकर एक सजग भाव है. इस पुस्तक में इन तीनों के रचना क्षेत्र के साथ-साथ उनके समय का लेखा-जोखा भी है और परिशिष्ट में ही सही लेकिन स्त्री सवालों के बरक्स उसको देखने और उन सवालों से उसकी मुक्ति की मुहिम भी. निर्मला जैन की आलोचना दृष्टि स्त्रीवाद के वैचारिक आग्रह से नहीं बनी बल्कि उन्हें तो कृष्णा सोबती की ही तरह 'स्त्री लेखन' की नाम पट्टिका से भी एतराज रहा है.

उषा प्रियंवदा तथा मन्नू भंडारी की कहानियां नई कहानी के अनुरूप एक खास तरह से परिस्थिति एवं मनःस्थिति के द्वंद्व को सामने लाती हैं. इनके केंद्र में अवश्य ही स्त्री मन के छोटे-छोटे सवाल हैं, खास तौर पर उस पढ़ी-लिखी स्त्री के, जो अपने अस्तित्व को लेकर सजग है और अपनी अस्मिता जताना चाहती है लेकिन परिवार और संबंधों के चक्रव्यूह में उसके हिस्से मानसिक उद्वेलन, आंतरिक पीड़ा, बेचैनी और अवसाद ही अधिक आते हैं. कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र अवश्य अलग हैं जो पूरी सच्चाई के साथ अपनी इच्छा-आकांक्षा को व्यापक ढंग से अभिव्यक्त करते हैं. 'दिल और दिमाग' का द्वंद्व वहां भी है लेकिन उनकी स्त्रियां अधिक एसेर्एटिव हैं.

स्त्री का लेखन स्त्री सवालों पर ही केंद्रित नहीं होता. वह अपने समय और समाज के सभी सवालों से उसी तरह जूझती है जैसे कि उसके देश के अन्य नागरिक. कृष्णा सोबती की राजनीतिक चेतना अत्यंत प्रखर थी. उन्होंने कितनी बार राष्ट्रीय दैनिकों के मुखपृष्ठ पर देश के हुक्मरानों को कटघरे में खड़ा किया. मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज' लोकतांत्रिक व्यवस्था के छद्म को उसी तरह बेनकाब करता है जैसे किसी अन्य लेखक का कर सकता है. आलोचना का धर्म रचना की उंगली थामे, रचना के भीतर पैठकर उसके सरोकारों से रूबरू कराने का है. स्त्री-आलोचना के नाम पर यदि हम केवल स्त्री मानकों को केंद्र में रखते हैं तो संकट पूर्ण होगा. निर्मला जैन की आलोचना दृष्टि स्त्री-आलोचना का एक प्रारूप प्रस्तुत करती है. वह न तो अतिरिक्त ढंग से स्त्री सवालों को केंद्र में लाती है,न ही किसी के लेखन को स्त्री होने के कारण साहित्यिक कसौटियों को हल्का करने की रियायत देती है.

निर्मला जैन जिस समय लिख रही थीं, वह आलोचनात्मक सक्रियता के उत्कर्ष का समय था. रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और भी कई बड़े नाम आलोचना जगत में खासी प्रतिष्ठा रखते थे. डॉ नगेंद्र ने एक विशेष तरह की विश्वविद्यालयी आलोचना का सूत्रपात किया था. नामवर सिंह ने अपनी रचनात्मक व्याख्याओं से आलोचना का कद बहुत बढ़ा दिया था. निर्मला जैन इन सबके बीच, अपनी आलोचना का लोहा मनवाती हैं तो उस सबके पीछे उनकी व्यवस्थित आलोचना दृष्टि है. आई.ए. रिचर्ड्स तथा टी.एस. एलियट उनके प्रिय आलोचकों में रहे हैं. निर्मला जैन भी अपनी आलोचनाओं में रचना के आंतरिक सत्य को उद्घाटित करते हुए, इस दृष्टि से कृति का मूल्यांकन अवश्य करती हैं कि रचना, साहित्य के प्रतिस्थापित प्रतिमानों को किस तरह प्रस्तुत करती है और साहित्य परंपरा को अपने मौलिक योगदान से किस तरह पुनः व्यवस्थित करती है. वे रचना के सभी पक्षों

को उठाते हुए बड़े तार्किक ढंग से उसकी नवीनता पर अपनी नजर टिकाती हैं. जैसे मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी' को सब जब बच्चे की नजर से देख रहे थे, वहीं निर्मला जी ने उसे व्यक्ति के निजी अहं, महत्वाकांक्षाओं और कुंठाओं की दृष्टि से देखा. ऐसा करने से उपन्यास को पढ़ने की दिशा बदल जाती है. सतह पर उद्‌भासित यथार्थ के विलोम में एक और यथार्थ उभरता है. कामकाजी स्त्री की पीड़ा और चुनौतियां, उसकी मान-मर्यादा और अहं, समाज की खोखली अपेक्षाओं का त्रास, सब एक साथ साकार हो जाते हैं, जबकि कहीं भी उनका आग्रह उस आलोचना को स्त्री केंद्रित करने का नहीं है.

यह हैरानी की बात है कि स्त्री दृष्टि या स्त्रीवादी आग्रह से स्वयं को मुक्त रखते हुए भी उनकी आलोचना दृष्टि स्त्री पात्रों पर टिकी है और स्त्री-पुरुष के बीच सूक्ष्म संबंधों पर भी. फिर चाहें वह कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा तथा मन्नू भंडारी की कथा कहानियों की पात्र हों या जैनेन्द्र और प्रसाद की स्त्री पात्र. प्रसाद की लंबी कविता 'प्रलय की छाया' में कमलावती के संदर्भ से उन्होंने रूप-मोह तथा सौंदर्य-बोध के अंतर की विडंबनापूर्ण परिस्थिति को रेखांकित किया. 'प्रलय की छाया' को सौंदर्य का समाधि लेख के रूप में प्रस्तावित करते हुए उन्होंने लिखा, "कमलावती का यह रूप मोह वह सौंदर्यबोध नहीं है जिसे चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा जाता है..." रूप गर्व तथा सौंदर्य की आंतरिक चेतना का द्वंद्व स्त्रीवाद में देह और यौनिकता के सवालों के बीच लगातार प्रतिध्वनित होता रहा है. निर्मला जैन की आलोचना दृष्टि संभवतः स्वयं को प्रसाद के काव्य में नैतिक-आग्रह के साथ जोड़ती है, "आंतरिक सौंदर्य से विहीन रूप का प्रमाद नारी की जीवनी-शक्ति का नहीं, मृत्यु का कारण होता है. प्रलय की छाया इसी सौंदर्यमयी वासना की आंधी की विनाश लीला है." (संचयिता, पृ. 42)

रूप-मोह और सौंदर्य-बोध का द्वंद्व कृष्णा सोबती की रचना 'मित्रो मरजानी' के मूल्यांकन में एक बार फिर उभरता है. उनकी कुछ टिप्पणियों पर नजर डाली जाए—"देह की प्यास और तपन का ऐसा बेधड़क स्वीकार अचंभित करने वाला था. एक महिला रचनाकार की कलम से जिसने तब से अब तक कभी देह की स्वतंत्रता और महत्व का स्त्री विमर्शवादी डंका पीटकर अपने साहस का बखान नहीं किया. सत्तर के दशक में, ऐसे बेलौस अकुंठ चरित्र का सृजन निश्चय ही चौंकाने वाली घटना थी." (कथा समय में तीन हमसफर, पृ. 108) मित्रो के माध्यम से स्त्री-देह की आकांक्षा को जिस रूप में कृष्णा सोबती ने प्रस्तुत किया उसके ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार करते हुए भी उपन्यास के अंत को लेकर उनकी टिप्पणी मित्रो को सामाजिक मर्यादा व दैहिक आकांक्षा की टकराहट के रूप में देखने की रही है, "मर्यादित पारिवारिक जीवन की ओर मित्रो की वापसी विडंबनापूर्ण एंटीकलाइमेक्स नहीं व्यक्तित्वांतरण है. मित्रो के जीवन में यह आत्मबोध का क्षण है और उपन्यास में पारिवारिक जीवन की हिमायत का... मित्रो सिर्फ स्त्री-पुरुष के दैहिक संबंध की कथा नहीं है. उसका एक वृहत्तर सामाजिक संदर्भ है." (कथा समय में तीन हमसफर, पृ. 112) यह सामाजिक संदर्भ, परिवार की वृहत इकाई और यौन शुचिता की नैतिक मर्यादा समर्थित उदात्तता से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाता. यही बिंदु उनके आलोचक की पक्षधरता को दोराहे पर ले आता है. 'आकांक्षा और उदात्त' एक-दूसरे का विलोम बनकर उभरते हैं, जिसके कारण स्त्री-आलोचना दो पक्षों में बंटी-बंटी-सी दिखती है.

नब्बे के दशक में स्त्री विमर्श की पुरजोर धमक के साथ स्त्री-आलोचना का जो दूसरा पक्ष उभरता है, उसमें इन सब स्थितियों को अलग ढंग से देखा-परखा गया है. इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि जैविक लिंग और जेंडर को सामाजिक तौर पर एक दूसरे से अलगाने की रही. 'सोशल कंस्ट्रक्ट' के रूप में जेंडर की अवधारणा के साथ स्त्री लेखन को पढ़ने और समझने की दृष्टि में इजाफा हुआ. 'पर्सनल इज पॉलिटिकल' की प्रतिध्वनि अनेक स्त्री रचनाकारों की आत्मकथाओं में साफ सुनाई दी. 'हंस' पत्रिका ने अस्मितामूलक विमर्शों पर केंद्रित चर्चाओं के लिए स्पेस बनाया. स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, आदिवासी सबके लेखन पर चर्चाएं होने लगीं. इस पूरे ही लेखन को नई दृष्टि से पढ़े जाने की मांग बढ़ी.

अनामिका ने 'स्त्रीत्व का मानचित्र' जैसी पुस्तक के माध्यम से भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि में स्त्री संघर्ष के इतिहास, उसके सैद्धांतिक एवं लोक पक्ष में स्त्री अनुभव और स्त्री सृष्टि को केंद्र में रखकर अपनी वैचारिक पक्षधरता स्पष्ट की. 'स्त्री-विमर्श का लोक पक्ष', 'मन मांझने की जरूरत' आदि ऐसी अनेक रचनाएं अनामिका ने प्रस्तुत कीं जिनका संबंध स्त्री-विमर्श के चिंतन पक्ष से था. उस समय रचना और आलोचना दोनों क्षेत्रों में इस दृष्टि से सक्रियता बढ़ी. रोहिणी अग्रवाल ने भी अनेक रचनाकारों का नई दृष्टि से मूल्यांकन किया. उनकी प्रमुख आलोचनात्मक कृतियों के शीर्षक से ही स्त्रीवादी आग्रह स्पष्ट झलकते हैं—'स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प', 'साहित्य की जमीन और स्त्री-मन के उच्छ्वास', 'हिंदी उपन्यास का स्त्री-पाठ', 'साहित्य का स्त्री स्वर'.

बहरहाल, इस समय में स्त्रीवादी नजरिए से कई रचनाओं के पाठ-पुनःपाठ हुए. खास तौर पर कथा लेखिकाओं की एक पूरी पीढ़ी—कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा और फिर बाद में ममता कालिया, चित्रा मुद्‌गल, मृदुला गर्ग, राजी

सेठ, चंद्रकांता, नासिरा शर्मा आदि–सभी की रचनाओं में बारीकी से बुनी गई स्त्री जीवन की परिस्थितियों को स्त्री दृष्टि से परखा गया. स्त्री-अस्मिता और द्वंद्व के अनेक छोटे-बड़े प्रसंग और निर्णय लेने की दुश्वारियां इनके कथा साहित्य में दर्ज हैं. स्त्री-दृष्टि से पढ़ने पर यह कथा साहित्य सामाजिक स्थितियों की जीवंत आलोचना लगता है. नई दृष्टि से पढ़ने पर उन्हीं रचनाओं का नया भाष्य मिला जिससे हमारे साहित्य रचना और आलोचना के स्थापित प्रतिमानों में परिवर्तन हुआ. मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कहानी संकलन 'गोमा हंसती है' की भूमिका में स्त्री लेखन व स्त्री चिंतन के एजेंडे को प्रस्तावित किया. इन सभी परिचर्चाओं में स्त्री अस्मिता के साथ-साथ स्त्री यौनिकता पर बहुत अधिक बल दिया गया. उसका नतीजा यह हुआ कि बहुत-सी स्त्री रचनाकारों ने भी स्वयं को स्त्री-विमर्श की चर्चाओं से अलग रखना बेहतर समझा. एक बार फिर स्त्री जीवन और लेखन में 'आकांक्षा और उदात्त' की टकराहट कहीं न कहीं इन सब बहसों के मूल में रही है.

आलोचना हो या लेखन, स्त्रियों के लिए यह यात्रा आसान नहीं रही. वह अपनी तरह से रचना और आलोचना के स्थापित मानदंडों के समक्ष चुनौती उपस्थित करती रही. कभी गर्मजोशी से उसका स्वागत हुआ तो कभी उसके यूं होने को साहित्यिक दुनिया में एक अलग जनक्षेत्र (कंस्टीट्युऐंसी) गढ़ने की कोशिश के रूप में देखा गया. जितनी प्रशंसा हुई, उतने ही आक्षेप भी लगे. जैसा कि स्त्री की सभी उपलब्धियों के साथ होता है, यहां भी आंखों की कनखियों से इतर कारणों की ओर इशारा किया गया. यह भी कहा गया कि साहित्य में जो दर्जा इन स्त्रियों को मिला है वह उनके स्त्री होने के कारण ही है और यदि उन्हें अखंड साहित्य परंपरा में देखा जाए तो उनके लेखन का वह वजूद, वह महत्त्व न होगा. ये सभी हथियार स्त्रियों पर आजमाए गए हैं कि स्त्री के लिखे को दबी जुबान से किसी पुरुष का लिखा माना जाए या फिर धीमी-सी फुसफुसाहटों में उसके संबंधों की व्याख्याएं होने लगे. ऐसी सारी कोशिशें स्त्री रचनाशीलता को अदृश्य रखने के लिए ही होती रही हैं. अधिकांश स्त्री रचनाकार यह भी महसूस करती हैं कि हिंदी की मठवादी आलोचना ने स्त्री-स्वरों को उचित स्थान नहीं दिया. उनकी हशियाकृत स्थिति संभवतः इसी उपक्रम का परिणाम है.

वैसे स्त्री-रचनाशीलता की तथ्यात्मक और सही तस्वीर पेश करने में सुमन राजे की पुस्तक 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' का ऐतिहासिक योगदान है. इस दृष्टि से सुधा सिंह ने जगदीश्वर चतुर्वेदी के साथ स्त्री साहित्य के संकलन तैयार किए. गरिमा श्रीवास्तव ने स्त्री आत्मकथाओं पर व्यापक काम किया. इन रचनाओं का आग्रह स्त्री साहित्य को उजागर करने पर अधिक रहा. उसके मूल्यांकन में स्त्रीवादी प्रपत्तियों को रचनाओं पर घटा देने का उपक्रम यहां नहीं है. इसलिए ऐसे संकलनों का अलग महत्व है. इनसे वह व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य उपस्थित होता है जिनके आधार पर रचनाओं से उद्भूत स्त्रीवाद की भारतीय दृष्टि को चिह्नित किया जा सकता है. दरअसल, स्त्रीवाद के भारतीय पक्ष को समझने के लिए हमें इन रचनाओं, आत्मकथाओं के पाठ-पुनःपाठ करने चाहिए जिससे पाठ की अंतरवर्ती ध्वनियों में स्त्री संघर्ष के आशयों व प्रस्थान बिंदुओं की पहचान बन सके. यह रचना को परत-दर-परत डिकोड करने से ही होगा क्योंकि जिसे हम साहित्य की अनवरत ऐतिहासिक परंपरा कहते हैं उसमें यह अवकाश नहीं बनता कि स्त्री के सच की आवाज को सुना जा सके.

स्त्रीवादी मानकों का संदर्भ बिंदु पितृसत्ता रही है जिससे स्त्रीवादी साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति के अनेक रूप, संघर्ष एवं मुक्ति के सोपान ही प्रमुख रूप से सामने आए या फिर सार्वभौम बहनापे पर बहुत बल दिया गया. आलोचना के जिस मठवाद का विरोध स्त्री रचनाकार कर रही थीं स्त्रीवादी आलोचना उसी तरह की हठधर्मिता का शिकार होने लगी. विश्व भर में स्त्रीवाद की विभिन्न धाराओं में बलाबल के आधार पर उदार स्त्रीवाद, रेडिकल स्त्रीवाद, मार्क्सवादी स्त्रीवाद आदि धाराओं में स्त्री मुक्ति के किसी एक पक्ष को केंद्र में रखकर लैंगिक असमानताओं से मुक्ति का आह्वान किया गया. ये सभी प्रयत्न इस मुक्ति अभियान के सार्थक पड़ाव तो हैं लेकिन उनके अपने पक्ष इतने हावी हैं कि उनसे आलोचना का भी एक कैनन बनने लगता है. अस्मितामूलक संघर्ष केवल एक सीमा तक ही परिवर्तन में सहायक हो सकते हैं.

फिर जैसा निर्मला जैन कहती हैं, 'सृजनात्मकता यथार्थ की प्रस्तुति में नहीं यथार्थ की संभावना की पहचान में होती है' वे अपनी आलोचना में बार-बार इस प्रश्न से टकराती हैं कि 'भोक्ता और रचयिता का फासला अच्छे लेखन के लिए कहां तक और कितना जरूरी है. साथ ही यह भी कि अनुभव और रचना का एकात्म अच्छी रचना के लिए साधक होता है या बाधक. अपने निबंधों–'साहित्य में आरक्षण (?) महिला लेखन' तथा 'उत्तरशती के उपन्यास : महिला कथाकारों के संदर्भ में' वे बार-बार स्त्री-विमर्श के उभरते सवालों को स्त्री लेखन बनाम पुरुष लेखन के संदर्भ में रखकर देखती हैं और महिला रचनाकारों द्वारा यथार्थ की प्रस्तुति में स्त्री की सामाजिक स्थिति की पड़ताल के सामाजिक महत्व को स्वीकार करते हुए भी साहित्यिक मूल्यांकन में वे उसे आलोचना के मानक के रूप में स्वीकार नहीं कर पातीं. साहित्य की समस्या समाजशास्त्र से अधिक गंभीर है. इसका संबंध रचनाकार की तटस्थ निस्संगता से भी है.

एक बार फिर निर्मला जैन के विचार का रुख करें तो उनकी यह बात मानीखेज लगती है कि "अस्मितामूलक विमर्श केवल अपने मैं पर ही केंद्रित है. इस लिहाज से यह बात मुझे परेशान करती है, जब तक इस 'मैं' से मुक्त नहीं होंगे तब तक बात नहीं बनेगी. लिखना, लेखक का काम है, मूल्यांकन करना नहीं. कुछ समय देना चाहिए और उस समय में तटस्थ भाव से मूल्यांकन को लेना चाहिए. मूल्यांकन अवश्य होगा." (आजकल, अमृत जयंती विशेषांक, जनवरी-फरवरी 2020, पृ. 50) एक स्त्री की कलम से स्त्री साहित्य एवं स्त्री आलोचना को लेकर की गई यह टिप्पणी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है. पहले उद्धरण में उन्होंने अपने लेखन के प्रति हुए असमान व्यवहार के संदर्भ में स्त्री और पुरुष के अंतर को स्वीकार किया था लेकिन साहित्य के मूल्यांकन की कसौटी का सवाल उठने पर उनका यह मानना कि स्त्री और पुरुष के लिए रचना और आलोचना की कसौटियां अलग-अलग नहीं हो सकतीं, साहित्यिक आलोचना का मजबूत तर्क है. इस दृष्टि से पुरुष रचनाकारों के साहित्य का भी पुनःपाठ होना चाहिए यह देखने के लिए कि उनका साहित्य स्त्री के प्रति कितना संवेदनशील है.

यद्यपि अभी तक हमारा समाज स्त्रियों के प्रति न्यायपूर्ण नहीं हुआ और स्त्रीवाद की चेतना का लाभ साहित्य और समाज में एक सीमा तक ही प्रभावी हो सका है फिर भी वैश्विक स्तर पर हम उत्तर स्त्रीवाद के दौर में प्रवेश कर चुके हैं. सामाजिक अध्ययन लिंग या जेंडर की असमानता को सिर्फ असमानता के एक प्रकार के रूप में पढ़ता है, एकमात्र आधार के रूप में नहीं. व्यक्ति की सामाजिक स्थिति व भौतिक उपस्थिति जहां से वह संसार को संबोधित कर रहा है उसके प्रति होने वाले भेदभाव को समझने में मदद करते हैं. हमारी सामाजिक-राजनीतिक संरचनाओं में अनेक प्रकार की हिंसा अंतर्निहित है. जाति, वर्ग आदि की विभाजक रेखाएं एक ही समय में एक दूसरे पर से गुजरती हैं जिनकी पहचान लिंग आधारित विषमताओं को समझने का सही परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती है.

समाज की सभी स्त्रियां सम-वर्ग नहीं हैं. जाति तथा वर्ग के आधार पर वे एक दूसरे से वैसा ही असमान व्यवहार करती हैं जैसा पुरुष उन जातियों और वर्गों के साथ करते हैं. सामाजिक संरचनाओं में सत्ता और वर्चस्व के आधार पर स्त्री-स्त्री, स्त्री-पुरुष के बीच अनेक प्रकार के पदानुक्रम स्थापित होते हैं. स्त्री रचनाशीलता और आलोचना की सार्थकता इस बात में हो सकती है कि वह इन संरचनाओं में अंतर्निहित हर प्रकार के शोषण को रेखांकित करे और उसके विरोध की पद्धतियों का अध्ययन करे. स्त्री रचनाकारों की कलम से अनेक ऐसी रचनाएं आई हैं जो तमाम सामाजिक असमानताओं को संदर्भ बनाती हैं लेकिन संभवतः हमारी आलोचना में स्त्री रचनाशीलता के उस पक्ष की परख बहुत कम हुई है. स्त्रीवाद के नाम पर या उसके बिना हम ऐसे प्रतिमान उपस्थित नहीं कर पाए हैं जिनसे आलोचना की वह शैली विकसित हो जो समाज के समावेशी चरित्र को प्रस्तुत करती हो. स्त्री रचनाशीलता में स्त्री अनुभव, स्त्री दृष्टि, स्त्री भाषा की अपनी महत्ता है लेकिन असली चुनौती इस बहुलतावादी समाज की अंतरवर्ती जटिलताओं की पहचान करने की है.साहित्यिक आलोचना के लिए यह बड़ी चुनौती है कि साहित्य की व्यापक मूल्यांकन पद्धतियों के निर्माण में वह ऐसी कसौटियों को विन्यस्त कर पाये जिससे सामाजिक असमानताओं की पहचान भी बने और उनसे संघर्ष और मुक्ति के रास्ते भी.

❐

संपर्क : एसोसिएट प्रोफेसर
इंद्रप्रस्थ महिला कॉलेज, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल : reksethi@gmail.com

हबीब कैफ़ी की ग़ज़ल

आज फिर तेरी गली में शख़्स वो पाया गया
जिसको तेरे हुक्म से फांसी पर लटकाया गया

चिलचिलाती धूप में इक टांग पर रस्सी पे खेल
एक रोटी के लिए क्या-क्या न करवाया गया

आप के हुस्ने-नज़र की दाद देनी चाहिए
झोंपड़े गिरवा दिए इक महल बनवाया गया

भूख से बेहाल होकर मर गए बच्चे कई
दूध से लेकिन यहां पत्थरों को नहलाया गया

हो गया जब बेअसर जादू पुराना दोस्तो!
इक नई जन्नत का हमको ख़्वाब दिखलाया गया

किस क़दर अवतार आए और पयम्बर भी मगर
भूख जैसा मस्अला फिर भी न सुलझाया गया

कुछ ग़रज मंदिर या मस्जिद से नहीं थी साहिबो!
सिर्फ़ कुर्सी के लिए आपस में लड़वाया गया

मयकदे का मयकदा तो कर दिया औरों के नाम
हमको बस दो-चार क़तरों से ही बहलाया गया

❐

संपर्क : 72, लाला लाजपतराय कॉलोनी
पांचवीं चौपासनी रोड, ईदगाह
जोधपुर-342003 (राजस्थान)
मो. 8000245673